प्रयागराज एक्सप्रेस

हिन्दी ADDA

कबीर संजय

प्रयागराज एक्सप्रेस

ट्रेन छुड़वाने में कोई कसर कम से कम ऑटो वाले ने तो छोड़ी नहीं थी।

अनुराग जब प्लेटफार्म पर पहुँचा तो ट्रेन खिसकने को तैयार थी। सीट कन्फर्म होने के बावजूद रिजर्वेशन चार्ट देखने की अपनी आदत उसने छोड़ी और सीधे एस तीन नंबर बोगी में घुस गए। डिब्बे में सभी लोग अपनी-अपनी जगह लेने में लगे थे। सीट के नीचे ब्रीफकेस और बैग सेट किए जा रहे थे। कोई खिड़की के पास बैठा बाहर की दुनिया के पीछे छूटने का इंतजार कर रहा था। ऊपर सोने वाले किसी ने अपने जूते पंखे पर रखने शुरू कर दिए थे। अनुराग जब अपनी सीट ढूँढ़ते हुए, सबसे बचते बचाते, अपना सामान सँभालते बोगी के अंदर पहुँचा तब तक ट्रेन खिसकने लगी थी।

गाड़ी में फर्क साफ दिख रहा था। जिनके टिकट कन्फर्म थे उन्होंने अपनी सीट पर चादर बिछानी शुरू कर दी थी। इसके अलावा ट्रेन में ढेर सारे ऐसे लोगों की भीड़ थी जिन्हें वेटिंग टिकट पर रात भर की यह यात्रा करनी थी। ये प्रयागराज एक्सप्रेस है। दिल्ली से इलाहाबाद और इलाहाबाद से दिल्ली।

इलाहाबाद में सर्दियाँ अपने चरम पर पहुँची हुई थीं। यूँ तो 20 दिसंबर के बाद ही कोहरे की उम्मीद की जाती है। लेकिन, इस बार कोहरा पहले ही सबकुछ को अपने आगोश में लेने को बेताब था। कहीं देर न हो जाए, इसलिए समय से काफी पहले ही अनुराग घर से निकल पड़ा। कॉलोनी के मोड़ पर खड़े होकर जब वह ऑटो का इंतजार कर रहा था तो सड़क के उस पार तक दिखना बंद हो चुका था। वाहनों के हेडलाइट दूर से बिल्लियों की आँख की तरह चमकते हुए दिखाई देते। अपनी तेज निगाहों से सबको घूरते हुए से वो आगे निकल जाते। अनुराग को इंतजार था एक आँख वाली बिल्ली का। इलाहाबाद में इस प्रकार की तीन प्रजातियाँ थीं। मोटरसाइकिल तो हर जगह ही अपनी एक आँख के चलते पहचान ली जाती है। यहाँ विक्रम और गणेश भी खूब चलन में है। उसे इंतजार विक्रम का था। जितने भी विक्रम आए, उनमें पहले से ही सवारियाँ बैठी हुई थीं। काफी इंतजार के बाद जो पहला खाली विक्रम वाला आया, उससे किराए पर ज्यादा हुज्जत किए बिना वह बैठ गया।

ऑटो वाले भाई ने जैसे ही सवारी बैठाई उसे इत्मीनान आ गया। उसने गुटखे का पूरा पाउच फाड़ा और सिर को थोड़ा ऊपर की ओर करते हुए पूरा का पूरा मुँह में उड़ेल लिया। वह उड़ेलने से उठी गर्द के बैठने का इंतजार क्षण भर तक करता रहा। फिर लार गुटखे को गीला करने लगी। विक्रम का इंजन बंद हो गया था। उसने एक रस्सी फँसाकर चार कदम पीछे हटते हुए रस्सी को खींचा और इंजन झक-झक की आवाज करते हुए स्टार्ट हो गया। भाई अपना वाहन लेकर चल पड़ा। लेकिन, मुसीबतों का अंत नहीं था। सड़क कोहरे में डूबी हुई थी। सड़क पर लगे स्ट्रीट लाइट बस अपने अस्तित्व का अहसास कराने में ही सक्षम साबित हो रहे थे। उससे ज्यादा की उम्मीद करना उनसे बेमानी थी। ऊँचे-ऊँचे खंबो से उतरती रोशनी में कोहरे के कणों को साफ देखा जा सकता था। वे अपने आसपास की हर चीज को धुँधला करने में लगे हुए थे।

ऐसे में आप समझ ही सकते हैं कि क्या हालत होगी जब विक्रम की हेडलाइट के तार भी ढीले हों। यह कभी जल जाती तो कभी बुझ जाती। पहले तो यह हिलती-डुलती रही। फिर एकाएक जब बुझी तो उसने जलने का नाम भी न लिया। भाई नीचे उतरा, पहले तो उसने ढेर सारी पीक का कुल्ला सड़क के किनारे किया और आगे से हेडलाइट को हिलाने-डुलाने लगा। लेकिन हेडलाइट जली नहीं। अपने मोबाइल की टार्च जलाकर

वह तारों का मुआयना करता रहा। लेकिन, यह मुसीबत टलनी नहीं थी। खैर, आखिरी समाधान की तरह उसने अपने डैशबोर्ड से टार्च निकाली और अनुराग को आगे की सीट पर अपने पास बैठा लिया।

भाई साहब, टार्च से रोशनी दिखाते जाना।

अनुराग को भारी कोफ्त हुई। लेकिन, क्या करता। वह आगे आ गया। अनुराग टार्च से रोशनी दिखाता रहा और भाई गाड़ी को धीरे-धीरे आगे बढ़ाता रहा। चलाने के अंदाज से कहा जा सकता था कि उसे इसकी आदत थी। नहीं तो कौन अपने डैशबोर्ड में टार्च लेकर चलता है। हालाँकि, टार्च की रोशनी नाकाफी थी। चारों तरफ इस तरह अँधेरा छाया हुआ था कि सामने से आ रहे सभी वाहन अपनी हेड लाइट्स को अपर पर लेकर चल रहे थे। कुछ ने उन पर पीली पन्नियाँ भी बांधी हुई थी। कुछ ने फोग लाइट जला रखी थी। पता नहीं आप लोगों को इन पीली रोशनियों का कभी अनुभव हुआ है कि नहीं लेकिन ये रोशनियाँ आँखों को बहुत ज्यादा एरिटेट करती हैं। वे धीमे चलेंगे, इसका ऐलान करते हुए कुछ लोगों ने पार्किंग लाइट जला रखी थी। पीली रोशनी जल-बुत कर रही थी। मतलब जिसे निकलना हो ओवरटेक करके निकल जाए, हम तो ऐसे ही धीमे चलेंगे।

ऐसे अँधेरे में जहाँ दो हाथ आगे का भी नहीं दिखता वहाँ पर टार्च की रोशनी क्या कमाल करेगी। अनुराग ने भाई को ज्ञान दिया, किसी गाड़ी के पीछे लगा दो, उसके पीछे की लाइट देखते हुए चलो। लेकिन, भाई में उससे ज्यादा आत्मविश्वास था। अरे अबहीं पहुँचाय देब आपका। ई का कोहरा है, ऐसे जादा में हम चलाय चुके हैं कई बार। अब इस पर वह कहता क्या। खैर खुदा-खुदा करके वो स्टेशन पर पहुँचा तो प्रयागराज एक्सप्रेस के जाने की उद्घोषणा शुरू हो चुकी थी। उसने भागते-हाँफते सीढ़ियाँ चढ़ी। प्लेटफार्म नंबर एक पर पहुँचा। ट्रेन धीरे-धीरे रेंगने को तत्पर थी। एक बार में ही एस-तीन नंबर बोगी दिखी और वह तुरंत ही बोगी के अंदर पहुँच गया।

बोगी में हर तरफ अपना सामान फैलाए हुए मुसाफिर मौजूद थे। जाड़ों के दिन थे, इसलिए हर एक के साथ सामान भी कुछ ज्यादा था। ज्यादातर लोग अपनी जगह ले चुके थे। उसकी बर्थ साइड अपर थी। जब वह अपनी सीट पर पहुँचा तो वहाँ पर एक सज्जन पहले से ही एक तरफ अपना बैग रखकर पैर फैला चुके थे। ट्रेन खिसकने के साथ ही टीटी ने उन्हें बर्थ देने का आश्वासन दे दिया था। बस कानपुर निकल जाने तक इंतजार करना था। यात्री नहीं आता है तो बर्थ एलाट कर दी जाएगी। लेकिन,

अनुराग आज किसी को अपनी सीट देने के मूड में नहीं था। तभी तो इतने भयंकर कोहरे से लड़ता-भिड़ता भी आखिर ट्रेन में पहुँच ही गया।

अपना टिकट निकालकर उसे गौर से देखने का बहाना सा करते हुए अनुराग ने पूछा, ये बर्थ आपकी है।

दूसरी तरफ से कुछ ऐसा जवाब दिया गया जो हाँ है कि ना, यह समझना बेहद मुश्किल था।

अनुराग ने अपने टिकट को एक बार फिर गौर से देखा और साहब से पूछा, चौबीस नंबर बर्थ तो मेरी है, आपकी बर्थ कौन सी है।

इस बार अनुराग की बात का कोई जवाब दिए बिना वह चुपचाप नीचे उतर आया। अनुराग ने पहले सामान ऊपर चढ़ाया फिर खुद भी अपनी बर्थ पर कायम हो गया। वो आदमी भी नीचे एक बर्थ पर थोड़ी सी जगह पर किसी तरह बैठने का प्रयास सा करने लगा। अनुराग ने अपने जूते खोले, बैग से स्लीपर निकाला। नीचे कंबल बिछा दिया और स्लीपिंग बैग की चेन को पूरा खोलकर कंबल की तरह ओढ़ लिया। अनुराग ने पूरे कूपे का मुआयना किया। आमने-सामने की तीन-तीन बर्थ। लोअर, मिडल, अपर। एक बर्थ उसकी साइड अपर और एक नीचे साइड लोअर। उसके दाहिने की अपर बर्थ पर इकहरे शरीर का लंबा सा नौजवान लेटा हुआ था। हाथ-पैर किसी एथलीट की तरह मजबूत। फौजियों जैसे कटे हुए बाल। चितकबरे हरे रंग का लोअर और चितकबरे हरे रंग की फरवाली जैकेट से ताकीद हुई की फौजी रँगरूट ही है। जैकेट उसने अपने सिर के नीचे लगा ली थी। ट्रेन में ठसाठस भीड़ थी। कहीं कोई अपर बर्थ पर चढ़ न जाए, इसके लिए रँगरूट अपने आप को ज्यादा से ज्यादा फुलाने और फैलाने में लगा हुआ था। अक्सर ही लोग पैर के पास जगह बनाकर बैठ जाते हैं और जैसे-जैसे रात होती जाती है, धीरे-धीरे वहीं पर पसरने लगते हैं। रँगरूट ऐसी किसी भी स्थिति को आने से बहुत पहले ही रोक देना चाहता था। अगर उसका बस चलता तो अपने पूरे शरीर को फुलाकर बर्थ के आकार के हिसाब से चौड़ा कर लेता। लेकिन, यह तो संभव नहीं था। इसलिए वह लगातार अपना पैर फैलाकर और अपने शरीर से ज्यादा से ज्यादा जगह घेरकर यह दिखाने की कोशिश करता रहा कि यहाँ पर जगह नहीं है। कहीं और देखो।

उसके नीचे की दोनों बर्थ बाप और बेटे की थी। बाप के बाल मेहँदी से लाल थे। बेटे की मूँछें निकलने को आतुर थीं। ट्रेन जब प्लेटफार्म पर खड़ी रही होगी तभी दोनों ने खाना खा लिया होगा और जैसे ही ट्रेन खिसकते हुए सूबेदारगंज से आगे निकली उन्होंने अपनी-अपनी बर्थ पर चादर बिछाई और कंबल ओढ़कर सो गए। कुछ ऐसा ही हाल

उनके सामने की सीट का भी था। यह तीनों सीटें एक ही परिवार के पास थीं। लगभग पचपन की उम्र का आदमी, 50 की उम्र की औरत और 20-22 की उम्र की युवती। युवती के नैन-नक्श कटीले थे। आँखों में लगाया हुआ काजल उन्हें अजब भेद भरी छटा दे रहा था। बस जैसे कोई बात है, लेकिन कहनी नहीं है। बस अभी बयाँ हो जाएगी। किसी तन्वंगी लड़की के सींक-सलाई जैसे शरीर पर जैसे पहली बार मांस चढ़ा हो। भरे-भरे से होंठ, गोलाई लिए हुए कंधे। जब-तब उसके कंधे से शॉल खिसक जाती तो वह बड़ी सँभाल के साथ शॉल को आँचल की तरह सिर पर ओढ़ लेती। सिर पर पल्लू बनाकर रख देती। उसके गरम सूट पर की गई लखनवी कढ़ाई की कारीगरी भी शॉल गिरने पर साफ झलक जाती। वो महिला को मम्मीजी और पुरुष को मामाजी कहकर संबोधित कर रही थी। इसी से अंदाजा सा लगता था कि महिला उसकी सासू माँ है और पुरुष सासू माँ के भाई।

इस परिवार ने भी खाना खतम करने में बमरौली आने तक का समय लगाया। इसके बाद उनकी बर्थ भी खुलनी शुरू हो गई। मामाजी अपर बर्थ पर चढ़ गए। बहू मिडिल बर्थ पर पहुँची और सास ने नीचे की बर्थ पर अपना बिस्तर लगा लिया। उनके चरणों के पास एक महिला बेहद औपचारिक सी होती हुई बस टिकने भर की जगह लिए हुए बैठी थी। पहले परिवार का इरादा बहू को अपर बर्थ पर चढ़ाने का था। लेकिन, सामने की बर्थ पर लेटे मुए रँगरूट को देखते ही सास का मन बदल गया। ऊपर से यह मुआ देखता भी कैसे टुकुर-टुकुर सा था।

अब बच गई अनुराग के नीचे की सीट, यानी साइड लोअर। इस सीट पर आमने-सामने दो लोग बैठे थे। दाहिनी तरफ एक भरे-भरे गालों वाली लड़की बैठी थी। जबकि, उसके सामने एक लड़का था, जिसके बाल कम उम्र में उसका साथ छोड़ने लगे थे। दोनों की सीट कन्फर्म नहीं थी। आरएसी मिली थी और दोनों के हाथ यही सीट आई। आधी-आधी। न इससे ज्यादा न कम। खैर, जाना तो है ही। लड़की पहले बोगी में चढ़ी थी। उसने अपना सामान खूब अच्छी तरह से सीट के नीचे सजा दिया। और पैर ऊपर कर पालथी मारकर बैठ गई। हे भगवान, सामने वाले की ट्रेन छूट जाए। हे भगवान सामने वाले की ट्रेन छूट जाए का मन ही मन जाप करती हुई वह खिड़की से बाहर देखने का बहाना सा कर रही थी कि उसका साथी मुसाफिर आ गया। सामने लड़की को देखकर पहले तो वह सकुचाया। लेकिन, रात भर का सफर है और इसे ऐसे नहीं काटा जा सकता है, इस सोच ने उसका संकोच दूर कर दिया। हल्के-हल्के हाथों से लेकिन दृढ़ता भरे भावों के साथ उसने अपना सामान सीट के नीचे लगाया और अपनी आधी सीट पर एक चादर बिछाकर उस पर बैठ गया। पैर ऊपर करके आलती-पालथी

मारते हुए उसने अपने घुटनों के ऊपर कंबल रख दिया। इसके बाद उन दोनों के बैग में से लैपटॉप निकल आए। दोनों ही अपने लैपटॉप में खोने से लगे। बस जैसे उन्हें किसी और बात से मतलब नहीं है। सामने लड़की बैठी है इससे भी नहीं। लड़की कोई ब्लॉग खोलकर पढ़ रही थी। लड़का लैपटॉप की स्क्रीन पर खुली और हाफ क्लोज्ड कई तरह की एक्सेल सीट पर मौजूद आँकड़ों पर निगाह जमाए हुए था। उन्होंने एक-दूसरे को हेलो तक नहीं कहा। और दाहिनी तरफ की अपर बर्थ पर खूब काले और सीधे बालों को करीने से काढ़े रँगरूट की काली-काली सी नजरें उन दोनों पर लगी हुई थीं। स्साले की क्या किस्मत है। रँगरूट ने मन ही मन रात भर दोनों की निगरानी करने की बात तय कर ली। देखता हूँ रात में क्या करते हैं स्साले। हालाँकि, वह उसमें कामयाब नहीं हुआ। ट्रेन खिसकी नहीं कि उसने धीरे-धीरे खुद को नींद के आगोश में पाया।

पूरी ट्रेन ठसाठस भरी हुई थी। जनरल डिब्बे में तिल धरने की भी जगह नहीं थी। लोग एक-दूसरे से सटकर खड़े थे। फर्श पर एक-दूसरे से सटकर बैठे थे। सर्दी का मौसम था। एक-दूसरे की गरमी भी अच्छी लग रही थी। स्लीपर बोगी में भी भीड़ कुछ कम नहीं थी। सीट की बर्थ पर कब्जा जमा चुके हुए यानी कन्फर्म सीट वालों के अलावा कुछ लोग वेटिंग टिकट वाले थे। रेलवे के टिकट काउंटर पर जाकर उन्होंने टिकट सिर्फ इसलिए खरीदा था कि कम से कम बोगी में घुसने का मौका तो मिलेगा। जबकि, कुछ लोग जनरल डिब्बे पर भारी भीड़ देखकर स्लीपर में चढ़ आए थे कि जब टीटी आएगा तो उसे कुछ पैसे दे देंगे। कुछ ऐसे भी थे जिन्हें कुछ फर्क ही नहीं पड़ता टीटी या पुलिस का। जब जेब में कुछ है ही नहीं तो लुट जाने का डर कैसा। दो-तीन भगवा धारी और एक-दो भिखारी किसम के लोग बाथरूम के बिलकुल दरवाजे पर बैठे हुए थे। दो बोगियों का संधिस्थल पर भी भरा हुआ था। यहाँ तक कि किसी को बाथरूम के अंदर जाना होता था तो पहले बाहर लेटे या बैठे लोगों को उठाकर जाना होता। उनके पास धेला नहीं था और न ही कोई टिकट था। हालत यह थी कि टीटी और जीआरपी वाले पहले तो उन्हें कोचते, कुछ माल-मत्ता निकलवाने की कोशिश करते और जब उनकी जेबें खाली पाते तो माँ-बहन की गालियों से ही रेलवे का राजस्व कुछ हद तक वसूल करने की कोशिश करते। कोई ज्यादा खुंदक में आने पर ट्रेन से उतार भी देता। लेकिन, वे अगली ट्रेन में फिर से उसी तरह जगह बना लेते।

जितने लोग बर्थ पर दिख रहे थे उससे कम से कम तीन गुना ज्यादा लोग ट्रेन में सवार थे और थोड़ा-थोड़ा करके अपनी जगह बना रहे थे। बड़े धैर्य के साथ उन्होंने ट्रेन के चलने का इंतजार किया था कि जैसे-जैसे ट्रेन चलेगी सब एडजस्ट हो जाएगा। जगह मिल जाएगी। ट्रेन के मनौरी पार करने तक तो कन्फर्म सीट वाले ज्यादातर लोग

अपनी सीट के हवाले हो गए। किसी सीट पर हल्की सी तशरीफ टिकाए लोग भी अब थोड़ा फैलने लगे थे। कुछ लोगों ने नीचे अखबार या पॉलीथीन बिछानी शुरू कर दी थी।

अपने-अपने लैपटॉप में डूबे लड़का-लड़का की टाँगें पालथी मारे-मारे दुखने लगी। लड़की ने पहल की, सीट को पूरा खोल लें।

लड़का तुरंत राजी हो गया, हाँ-हाँ, ठीक रहेगा। कहते हुए वह उठ भी खड़ा हुआ। दोनों ने सीट खोल ली। इससे दोनों सीटों के बीच बना गैप भर गया। अब इसमें दोनों ने अपना पैर फैला लिया। इसमें इस बात का पूरा खयाल रखने की कोशिश हुई कि कहीं शरीर का कोई हिस्सा आपस में छू न जाए। खासकर लड़के ने इसकी पुरजोर कोशिश की। हालाँकि, लड़की के पैर ने उसे जहाँ भी असावधानी वश छुआ, उसे अच्छा ही लगा। लैपटॉप बैग में जा चुके थे। दोनों पैर फैलाए अधलेटे से आँख बंद करके सोने की कोशिश करने लगे। उन पर निगाह रखने का संकल्प करने वाला रँगरूट अगर इस समय जाग रहा होता तो उसकी कल्पनाओं के दरवाजे खुल चुके होते। लड़की ने कंबल फैला कर उसे अपने सीने तक ओढ़ लिया। लड़के ने भी कुछ इसी तरह से कंबल ओढ़ा हुआ था। रँगरूट जगता होता तो देखता कि कंबल के नीचे से उनके पैर क्या खुराफात करते रहे।

ये ट्रेन कानपुर गुजरने के बाद ही पूरी तरह से सोती है। 9.30 बजे इलाहाबाद से चलकर 12 बजे के करीब यह कानपुर पहुँचती है। कानपुर से पहले फतेहपुर में ट्रेन का लगभग दो मिनट का स्टापेज है। कानपुर से भी काफी लोग ट्रेन में चढ़ते हैं, कुछ लोग उतरते हैं भी हैं, इसलिए कानपुर आने तक ट्रेन निंदाई हुई भले हो, लेकिन पूरी तरह सोती नहीं है। सर्दियाँ अपना कमाल दिखा रही थीं। खागा के गुजरते-गुजरते ट्रेन बेतरह नींद में जकड़ चुकी थी। बर्थ पर सोने वाले कुछ लोगों ने अपना मुँह भी कंबल से ढक लिया था। कुछ के कंबल पैरों की तरफ से फर्श पर लुढ़कने को हो रहे थे। आमने-सामने की बर्थ के नीचे फर्श पर दो-दो लोग सोए हुए थे। साइड बर्थ के सामने से निकलते पूरे गलियारे में लोग सोए हुए थे। बत्तियाँ बंद थीं। केवल बाथरूम के पास की एक बत्ती जली थी। जिससे कुछ रोशनी आ रही थी। बोगी के दरवाजे को बंद करके वहाँ भी बिस्तर लगाए जा चुके थे। काफी देर तक टीटी और वहाँ पर अड्डा जमाए आवारों के बीच हुज्जत चलती रही। ट्रेन से उतारने की नाकामयाब धमकी देकर आखिर टीटी भी अपनी सीट पर चला आया। और ट्रेन पूरी रफ्तार से दौड़ती रही।

इसी अलसाए-निंदाए मूड में ही ट्रेन किसी तरह से कानपुर पहुँची। एकबारगी चायवाला, खाना, पानी की बोतल की गुहार लगाने वालों की आवाज जोर-शोर से

सुनाई देने लगी। जल्दी-जल्दी सामान उतारने और चढ़ाने की कोशिशें भी भारी थीं। लेकिन, कुल मिलाकर यह सबकी नींद तोड़ने वाली आवाजें नहीं थीं। नींद टूटने पर कुनमुनाते हुए किसी ने पूछा भी तो किसी ने वैसे ही कुनमुनाई सी आवाज में बताया, अबही कानपुर है।

का, कानपुर। यह कहने से बाद वह फिर से आँख बंदकर सो गया। ट्रेन कानपुर से चल पड़ी। रही-सही कसर पूरी हो गई। टीटी को भी अब किसी से वसूली की उम्मीद नहीं रही। जीआरपी का सिपाही भी अब नाकाम कोशिशें करने की इच्छा नहीं रखता था। ट्रेन पूरी तरह से सोने लगी। बस इसके सिरे पर, इंजन के अंदर कोई बैठा होगा, जो इसे जागते हुए चला रहा है। इतने सारे सोए हुए लोगों की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लिए। बीच-बीच में उबासियाँ लेता हुआ, अपने जोड़ीदार को वह शायद बीड़ी जलाने के लिए कहता होगा। फिर बीड़ी की आँच में कुछ देर नींद, सर्दी और कोहरे को दूर भगाने की कोशिश करता होगा।

यह डिब्बा भी नींद की गिरफ्त में आ गया। अचानक लगा कि जैसे बोगी में कई सारे शेर घुस आए हैं। कई तरफ से गुर्राहटें सुनाई पड़ रही थी। किस्में भी अजीब थीं। किसी एक जगह से खर्र-खर्र की लय पर साँस ली जाती तो खुर्रर्र की ध्वनि पर साँस छोड़ दी जाती। जबकि, किसी एक बर्थ से इस खर्र और खुर्र के बीच साँस फँसने पर सीटी जैसी आवाज भी आती। ये आवाजें एक-दूसरे से टकरा रही थीं। एक आदमी जिसे कहीं पसरने की जगह नहीं मिली थी, सर्दियाँ उसका कड़ा इम्तहान ले रही थीं। उसकी नाक बंद हो गई। साँस लेना दूभर हो गया। वह बार-बार बाथरूम के पास लगे वॉश बेसिन तक किसी तरह से जगह बनाता हुआ पहुँचता और भें-भें कर नाक छिनकने की कोशिश करता। लेकिन, नाक पूरी तरह से बंद हो गई। भें-भें की आवाज तो जोर से निकलती लेकिन नाक न निकलती। कभी-कभी इस भें-भें की आवाज में भी सीटी की सी ध्वनि सुनाई पड़ती। फिर शेरों की इन गुर्राहटों और रस्सी में बँधे किसी मेमने के रिरियाने की यह आवाजें भी नींद में डूबती गईं।

ये कोई बहुत ज्यादा घने कोहरे वाली जगह थी। ट्रेन की खिड़कियों पर लगे शीशें यूँ भी बहुत ज्यादा धुँधले हो जाते हैं। और अगर कोहरा हो तो बाहर देखना लगभग असंभव ही है। रात छँटने लगी तो बगल की जमीन पर मौजूद ट्रेन की पटरियाँ दिखने लगीं। उनके ऊपर धुएँ सा कोहरा उड़ रहा था। आस-पास बेतरह खामोशी छाई हुई थी। जैसे कोहरे के चलते पक्षी भी अपने घोसले में दुबक गए हों। पटरियों के नजदीक ही सरपत के झुंड खड़े थे। कोहरे की लहरियाँ जब अपना स्थान बदलतीं तो सरपत के झुंड के कुछ सिरे भी दिख जाते। सरपत की पत्तियाँ ओस से भीगी हुई थीं। किसी-किसी

सरपत में फूल भी लगे हुए थे। ओस की बूँदों के बोझ से सरपत के ये फूल भी बस गिरने-गिरने को हो रहे थे। सरपत की जड़ों के पास छोटे-छोटे पानी के जोहड़ बने हुए थे। बरसात में इन जोहड़ों में पानी भर जाता होगा। इसके बाद पूरे मौसम यह पानी सूखता होगा। जाड़े का मौसम था। कई जगह से पानी सूख चुका था। कुछ जगहों पर काई की परत मोटी होती गई। सूखी हुई जमीन के कुछ हिस्सों पर भी सूखी हुई काई चिपकी हुई थी। पहले यहाँ भी पानी रहा होगा, लेकिन अब यहाँ जमीन सूखी थी। कोहरे की लहरें हटतीं तो कोहरे के परदे के पार पेड़ों के झुंडों का भी आभास होता। लेकिन, इन पेड़ों की पहचान करना भी मुश्किल था और खेतों तक निगाह जाना तो और असंभव।

ट्रेन रुकी हुई थी। अभी पूरी तरह सुबह नहीं हुई थी। छह-साढ़े छह का वक्त रहा होगा। बोगी में लोगों की नींद टूटनी शुरू हो गई। मिडिल बर्थ पर सोई हुई परिवार की बहू सबसे पहले उठी। सुबह के वक्त बाथरूम खाली भी रहते हैं और कुछ हद तक इस्तेमाल करने लायक भी। बहू इस सच्चाई को जानती थी। उठते ही उसने किसी तरह से अपनी स्लीपर ढूँढ़ी और पूरे कारीडोर में सोए हुए लोगों के बीच में से किसी तरह अपने पंजे रखते-जगह बनाते हुए बाथरूम तक पहुँच गई। वहाँ से लौटने के बाद उसने अपने मुँह पर पानी के छींटे मारे और बालों से हेयरबैंड निकालकर पूरे बाल खोल लिए। अपने छोटे से हैंडबैग से एक चौड़े दाँतों वाला कंघा निकालकर वह बालों को सँवारने लगी। मोबाइल की टार्च उसकी मदद कर रही थी।

प्रयागराज से सफर करने वालों को नींद खुलने के साथ ही गाजियाबाद के दर्शन करने की आदत होती है। ट्रेन रुकी हुई थी तो लोगों ने जगह का अनुमान लगाना शुरू कर दिया। कहाँ हैं हम। बाथरूम के पास लगे लोगों में से किसी ने जवाब दिया, गाजियाबाद पहुँचने वाले ही होंगे।

लग रहा है स्टेशन के आउटर पर ही गाड़ी खड़ी है।

सिगनल नहीं मिल रहा होगा।

काफी देर से खड़ी है का...

अब का पता...

इतने में बाथरूम के पास बैठे किसी आदमी ने अपना मोबाइल निकाल लिया। लोगों को अपनी आदतें छोड़ने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। और अगर आदत अच्छी हो

तो उसे छोड़ना भी क्यों। किसी चाइनीज कंपनी का बना हुआ सस्ता सा मोबाइल अपनी कर्कश और तेज आवाज में भजन गाने लगा, प्यारा सजा है दरबार भवानी, भक्तों की लगी है कतार भवानी। इसके बाद, चोला लाल - मैया का चोला लाल-लाल-लाल।

जगह के बारे में यह अटकलें चल ही रही थीं। सुबह साढ़े छह का वक्त था। किसी ने कहा कि गाड़ी अलीगढ़ और गाजियाबाद के बीच में कहीं है। अब इस बीच को हर कोई अपने-अपने हिसाब से बताने की कोशिश करने लगा। इतने में नीचे की आरएसी में लड़की के साथ रात भर सीट शेयर करने वाले युवक ने अपने मोबाइल पर गाड़ी की स्थिति का अंदाजा लगाया, अरे ये तो इटावा के आस-पास कहीं है, इंटरनेट गाड़ी की जो स्थिति बता रहा था, उस पर खुद भी विश्वास नहीं करते हुए वह बोला।

अब बातचीत के केंद्र में इटावा और कानपुर आ गया। ट्रेन में लगभग सभी लोग जाग चुके थे। कारीडोर और जमीन पर सोए हुए लोग धीरे-धीरे उठने और अपने बैठने की जगह तलाशने लगे।

कानपुर से खुली तो ठीक समय पर थी।, एक ने कहा।

हाँ, वहाँ तक तो हमें भी याद है। एकदम राइट टाइम थी। दूसरे ने ताईद की।

इतना लेट थोड़े हो सकती है।

आरएसी वाला लड़का भी इस सच्चाई को मानने के लिए तैयार नहीं था, बोला, हाँ, रेलवे वाले इंटरनेट पर भी जानकारी गलत ही डालते हैं। इन पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता।

चारों तरफ एक तो कुछ खास दिख नहीं रहा था, उसमें भी कुछ ऐसे निशान ढूँढ़ना जो उस जगह के बारे में कोई जानकारी दे, बेहद मुश्किल था। किसी ने ट्रेन का दरवाजा खोल दिया। कोहरे की एक लहर अंदर ही घुसने लगी। बाहर जीवन के कुछ खास चिह्न नहीं दिख रहे थे। बस, कोहरे में डूबे, कोहरे का एक हिस्सा बने, कोहरे की बूँद-बूँद टपकती ओस से अपने फूलों और पत्तियों को भिगोए सरपत के झुंड दिख रहे थे। पटरियों के आस-पास कोई ऐसा भी आता-जाता दिखाई नहीं दिया जो कुछ बता सके। इसका मतलब शहर या गाँव वहाँ से दूर था। नहीं तो कोई न कोई चाय या कुछ लेकर बेचने ही आ जाता।

सरपत के झुंड के बीच में से दिख रहे एक हल्के काले धब्बे में थोड़ी हरकत हुई। डेढ़ लीटर वाली पेप्सी की बोतल के पानी से शौचने के बाद वह उठा। अपना पिछवाड़ा दिखाते हुए उसने अपनी पैंट ऊपर खींची। बोतल में बचे हुए पानी को नलके की धार की तरह उड़ते हुए वह चला तो पीछे से किसी ने आवाज मारी, भैया ई कौन सी जगह है।

इटावा है इटावा। उसने मुँह सीधा किए बिना कहा और बोतल का मुँह नीचा किए हुए अपने रास्ते चला गया।

खुले हुए दरवाजे से इटावा की यह धुन पूरी बोगी में गूँज गई। अविश्वास की कोई वजह नहीं रही। अब तो अपने-अपने बर्थ पर कंबल ओढ़कर सोई हुई सवारियाँ भी उठ गईं।

भाई लखविंदर सिंह लक्खा अब तक माँ के दरबार की सजावट और उनके लाल चोले की तारीफ करने के बाद उन्हें झूला झुलाने लगे थे। लेकिन, बोगी में अटूट चिढ़ और चिंता का संचार हो गया।

कोई चिल्ला कर बोला, अरे लाउड स्पीकर क्यों नहीं लगा लेते। गाना ही सुनना है तो कान में ईयर प्लग लगाओ।

गाना नहीं भजन है। मोबाइल वाले ने थोड़ा भुनभुनाते हुए प्रतिवाद किया।

अरे महाराज तो मंदिर छोड़ ट्रेन में क्यों चढ़ आए।

मोबाइल वाले ने हड़बड़ाकर भाई लखविंदर सिंह लक्खा को चुप कराया।

सुबह का धुँधलका छँटने लगा था। रात की कालिमा तो खतम हो गई। लेकिन, सूरज का उजास प्रभावी नहीं हो पाया। ट्रेन धीरे-धीरे खिसकने लगी। चींटी की तरह धीरे-धीरे चलती हुई। पहले तो उसके खिसकने पर विश्वास ही नहीं हुआ। लेकिन खिड़कियों के बगल में मौजूद खंबे धीरे-धीरे पीछे जाने लगे। चींटी की रफ्तार थोड़ी तेज हुई और बैलगाड़ी की चाल में बदल गई। बैल अपने नथुने से भाप छोड़ता हुआ चलने लगा।

अपने मोबाइल में मिरर एप्स का इस्तेमाल करके परिवार की बहू यानी दीपा शीशा देख रही थी। फ्रंट कैमरे का इस्तेमाल करके पाँच इंच की स्क्रीन शीशे में तब्दील हो गई थी। दीपा ने अपने बालों को कसकर बांधकर पीछे जूड़े की शकल दे दी थी। कल के सलवार सूट की जगह पर अब उसने नीले रंग की एक जींस पहनी हुई थी और उस पर

काले रंग की टीशर्ट। कानों में कम से कम इतने बड़े रिंग वाले टाप्स लटक रहे थे जिसमें से आलूबुखारे के आकार की गेंद भी बाहर निकल जाए। काले रंग की टीशर्ट पर उसने मोंटे कारलो की हल्के मरून कलर का वी गले का स्वेटर पहन लिया। जिसमें से टीशर्ट के कॉलर झाँक रहे थे। पूरे चेहरे पर नीविया की क्रीम हल्के से लगाने के बाद वह अपने होंठों पर लिपिस्टिक लगा रही थी। अपने मोबाइल में देखकर वह कभी होंठ फैलाती तो कभी उन्हें गोल कर लेती। इसी समय वह बम फटा, जिसका नाम इटावा था। दीपा के लिए इटावा बीच में से गुजरने वाला एक शहर था। वह उस शहर के बारे में कभी भी कुछ नहीं जानती थी। उसके लिए इटावा की पहचान सिर्फ मुलायम सिंह और अखिलेश यादव से थी। यह उन्हीं का इलाका है। ऐसा लोग आम बोल-चाल में कहा करते थे। दीपा का इलाहाबाद से दिल्ली और दिल्ली से इलाहाबाद अक्सर ही आना-जाना होता था। कानपुर में कुछ रिश्तेदारियाँ थीं। तो वहाँ भी आना-जाना होता। लेकिन, रास्ते में पड़ने वाले इटावा और अलीगढ़ तो पूरी ही तरह से अजनबी थे। उसने कभी इटावा को जाना भी नहीं।

सुबह के सात बज चुके हैं और गाड़ी इटावा के थोड़ा आगे कहीं रेंगती हुई चल रही थी, दीपा के लिए यह कोई कम डराने वाली बात नहीं थी। मोबाइल देखकर लिपिस्टिक लगाते हुए उसके हाथों में शिथिलता आ गई। हाथों पर मुर्दनी छा गई। काम पूरा करने के बाद उसने लिपिस्टिक को किसी तरह से बैग में रखा और मोबाइल की टच स्क्रीन में बैक के बटन को छूकर मिरर एप्स से बाहर आ गई। यह उसके लिए एक ऐसी सूचना थी जिसे सुनने के लिए वह एकदम भी तैयार नहीं थी।

मम्मी जी और मामा जी भी कभी के उठ चुके थे। मिडिल बर्थ खुल चुकी थी। तीनों ही निचली बर्थ पर बैठकर अपने कंबल तह करने के मूड में थे। सासू माँ अपनी बहू को तैयार होते हुए बड़े मन से देख रही थीं। बहू के चेहरे के लावण्य को देखकर, उसकी आँखों की चमक देखकर और हाथों की फुर्ती देखकर सास को बार-बार रश्क हो रहा था। निशांत उसे देखेगा तो खुश हो जाएगा।

दीपा की शादी को छह माह हो गए थे। निशांत गुजरात के वड़ोदरा में नौकरी करता था। किसी कंपनी में एरिया मैनेजर था। सगाई होने के बाद से ही दोनों एक-दूसरे से घंटों फोन पर बतियाने लगे थे। निशांत ने उसकी दुनिया बड़ी कर दी। उसके सपनों में कई सारे नए रंग भरने लगा। दुनिया जहान की बातें थीं। कभी खत्म होने का नाम भी नहीं लेतीं। कई बार फोन गरम हो जाता और कान जलने लगता। लेकिन, निशांत फोन रखने का नाम ही नहीं लेता। फोन करते समय दिन और रात का भी खयाल नहीं करता। जब मन करता, बस फोन कर लेता। हाँ, कैसी हो, कहाँ हो, क्या कर रही हो,

तुमने पहन क्या रखा, आज खाया क्या और पता नहीं क्या-क्या। कई बार वह चिढ़ भी जाती। इसे इतनी बात करने की फुसरत कैसे है। मन आशंकित हो जाता। एरिया मैनेजर ही है न। नहीं होगा तो जरूर। पापाजी लोगों ने सेलरी स्लिप भी देखी थी। तभी तो शादी तय हुई। फिर इतनी फुरसत कैसे।

और अगर फोन नहीं आता तो भी कहीं दिल नहीं लगता। बार-बार फोन देखती कि कहीं मिस कॉल तो नहीं पड़ी हुई है। फोन किया हो और मैं सुन न पाई हूँ। हर समय लगता कि फोन बज रहा है। जब फोन देखती तो फोन चुप है। इनके अभी से ये हाल हैं तो शादी के बाद क्या होंगे। हर समय मोबाइल की रिंग बजती हुई सुनाई पड़े तो समझो की रिंगजाइटिस हो गया है। एक स्कूली सहेली ने जब मोबाइल फोन आने के बाद तेजी से बढ़ रही इस बीमारी के बारे में बताया तो उसने लगे हाथ उपाय भी पूछ लिया। जब बार-बार फोन बजने का भ्रम होने लगे तो मोबाइल की रिंगटोन बदल लो। उसने ऐसा ही किया, घंटी का भ्रम होता तो फिर याद करती कि नहीं मेरी वाली रिंगटोन तो दूसरी है। लेकिन, कुछ देर बाद दूसरी रिंगटोन के साथ भी वही हालत हो जाती।

खैर, कैसे तो इंतजार के दिन बीते। शादी हुई। शादी के अगले दिन ही विदा होकर वह अपने पति के घर आ गई। मायके और ससुराल में ज्यादा दूरी नहीं थी। निशांत के साथ पंद्रह दिन रही। सप्ताह भर घर में, फिर तीन दिन के लिए शिमला। वहाँ से लौटे तो निशांत के ऑफिस ज्वाइन करने के समय आ गया। पति चला गया तो ससुराल खाने को दौड़ने लगा। बात यह तय हुई थी कि वड़ोदरा में निशांत दो कमरे का अच्छा सा घर किराए पर लेने के बाद उसे अपने साथ ले जाएगा। फिलहाल वह किसी वन रूम सेट में रहता था।

इंतजार की घड़ियाँ भी लंबी होने लगीं। काम कोई भी हो दीपा, हर समय निशांत के खयाल में ही डूबी रहती। दिमाग में शिमला छाया रहता। हर समय। पहाड़ों की ऊँचाइयाँ-नीचाइयाँ पूरी रफ्तार से नापती हुई बस चलती रहे। उसकी सीट पर निशांत अपना हाथ फैला दे और वह अपना सिर उस पर रखकर बस सोती रहे। इस तरह के खयालों के दिन भी पूरे हुए। छह महीने हो गए थे और निशांत उसे लेने आने वाला था। सुबह दस बजे निशांत की फ्लाइट दिल्ली पहुँचने वाली थी और तीन बजकर 45 मिनट पर दूसरी फ्लाइट से वह निशांत के साथ वड़ोदरा जाने वाली थी।

सुबह दस बजे निशांत दिल्ली पहुँच जाएगा और अभी आठ बजने को है और वे लोग अलीगढ़ भी नहीं पहुँच पाए हैं। दीपा का मन रोने को होने लगा। बहू की ऐसी अधीरता

पर सास का स्वर पहले तो दयालु सा हुआ। फिर वह उसके ऊपर खीजने लगी। अरे बेटा अभी, कोहरा छँटेगा तो गाड़ी तेज हो जाएगी। फिर वापसी की फ्लाइट तो पौने चार बजे है न। अभी तो बहुत टाइम है। लेकिन, दीपा की आँख में आकर एक आँसू अटका ही रहा।

ये इटावा के नाम का ही जादू था कि दाहिनी तरफ की अपर बर्थ पर लेटा हुआ रँगरूट पहली बार नीचे उतर आया। ट्रेन पर चढ़ने के बाद उसने तुरंत ही अपनी जगह ले ली थी। बिस्तर बिछा लिया था। पूरी रात वह इसी संघर्ष में डूबा रहा कि कहीं उसकी बर्थ पर कोई और न टिक जाए। इस कोशिश में वह अक्सर ही अपने पैरों को फैलाकर पूरी बर्थ घेरने की कोशिश करता रहा। हालाँकि, इस कोशिश में वह इतना थक गया कि एक ही बर्थ साझा करने वाले लड़का-लड़की के बीच रात भर चलने वाली चुहलों को वह देख भी नहीं सका। लेकिन, इसकी कमी उसने अपनी कल्पनाशक्ति से कर लेनी थी। जब लड़के ने अपने पैर धीरे से उठाकर लड़की की छाती पर रखे होंगे और अँगूठे से उसे हल्के से टहोका होगा तब...। पर इटावा के नाम ने इन कल्पनाओं का भी दम तोड़ दिया। सच्चाई की जाँच करने के लिए वह नीचे उतर आया। ट्रेन धीरे-धीरे खिसक रही थी। वह बोगी के दरवाजे तक गया। खुले हुए दरवाजे से कुछ देर तक बाहर के संसार को घूरने के बाद वह लौटने लगा। धीमी रफ्तार से चलती ट्रेन से हवा भी धीरे आ रही थी। लेकिन, ठंड के चलते इस हवा को भी झेलना मुश्किल ही था। उसके काले सीधे बाल हवा में उड़ने लगे। बिस्तर से मिली गरमाई अभी तक उसके साथ थी। लेकिन, ट्रेन के बाहर से आती हवा उसकी गरमाई को जल्दी से जल्दी छीनने लगी। अपनी दोनों मुट्ठियों को कसकर बंद करता हुआ, अपने मुँह के पास ले जाकर उनमें फूँक मारता हुआ वह चुपचाप अपनी सीट की तरफ लौट आया।

साल भर की नौकरी पूरी करने के बाद यह रँगरूट पहली बार छुट्टी में घर आया था। छुट्टियाँ लंबी थीं। लेकिन, खतम तो होनी ही थीं। छुट्टी पूरी होने के बाद वह अपनी यूनिट में लौट रहा था। यूनिट अंबाला में थी। शाम को पाँच बजे तक उसे अपनी यूनिट में रिपोर्ट करनी थी। प्रयागराज में रिजर्वेशन कराके वह निश्चिंत हो गया था। सुबह सवा सात बजे तक गाड़ी को दिल्ली पहुँच जाना था। वहाँ से कोई भी ट्रेन पकड़कर अंबाला जाया जा सकता था। ट्रेन में देरी होने पर वह बस से भी अंबाला पहुँच सकता था। यूनिट में रिपोर्ट करना बहुत जरूरी था। लेकिन, आठ बज चुके थे और ट्रेन अभी अलीगढ़ भी नहीं पहुँच पाई थी। अब अंबाला का क्या होगा। मुर्दाते हुए शरीर से धीरे-धीरे वह ऊपर चढ़ा और मुँह पर कंबल ओढ़कर फिर से सो गया। इस बार आरएसी बर्थ पर होने वाले रोमांस में उसकी दिलचस्पी खतम हो चुकी थी।

उसके नीचे की मिडिल और लोअर बर्थ पर मौजूद दोनों बाप-बेटों को भी कम झटका नहीं लगा। दोनों के हाव-भाव और अंदाज उनके मुसलमान होने की गवाही दे रहे थे। बाप के बाल और दाढ़ी मेहँदी से लाल-लाल रंगे हुए थे। पाँचों बखत की नमाज से माथे पर एक जगह पर काला निशान पड़ गया था। लेकिन, हाथों में पहनी सोने की अँगूठियों और उसमें जड़े रत्नों से कोई भी समृद्धी का अनुमान लगा लेता। पान-तंबाकू छोड़े लंबा वक्त होने के बाद भी दाँतों पर उनका काला निशान अभी तक चढ़ा हुआ था।

सात-आठ साल पहले सलीम अहमद किसी तरह से पैसा जुगाड़कर सऊदी अरब गए थे। सलीम अहमद नलका लगाने और ठीक करने का काम करते थे। पाँच बेटियाँ थीं और एक बेटा। सबको पालने-पोसने की चिंता जब हद से ज्यादा बढ़ी तो सउदिया के दीनार लुभाने लगे। उनके कुछ रिश्तेदार पहले वहाँ जा चुके थे। उनकी समृद्धि के किस्से गाहे-बगाहे सुनाए जाते। उन्होंने भी जुगाड़ लगाया और किसी तरह से सउदिया पहुँच गए। प्लंबर की जरूरत सउदिया को भी थी। तो उन्हें वहाँ भी काम मिल गया। दीनार में जो कुछ कमाते थे, रुपये में उसका 28-30 गुना हो जाता था। प्लंबर के काम के अलावा एक पार्किंग की सफाई का जिम्मा भी उन्हें मिल गया। खुद का खर्चा पार्किंग की सफाई से निकाल लेते। बाकी पैसा घर भेज देते। घर का मकान दोमंजिला हो गया। दो बेटियों की शादी हो गई। तीन अभी बची हुई थीं। लेकिन, दिन भर की मेहनत अब हालत खस्ता करने लगी थी। वापस अपना देश लौटना चाहते थे। छुट्टियों में घर आए तो लौटते समय उन्होंने अपने बेटे अकरम का टिकट भी सउदिया के लिए बुक करा लिया था। अब ये दोनों बाप-बेटे सउदिया जाने वाले थे। दसवीं में फेल हो चुका अकरम अब सउदिया में अपना भाग्य आजमाने वाला था। सुबह सात-आठ बजे तक इन्हें दिल्ली पहुँच जाना था और वहाँ से एयरपोर्ट। हवाई अड्डे से उनकी फ्लाइट पाँच बजे उड़ान भरने वाली थी। दोनों बाप-बेटों के चेहरों पर भी चिंता की लकीरें थीं। फ्लाइट पकड़नी थी और अभी तो अलीगढ़ भी नहीं पहुँचे। आठ बजने को है। फिर दिलासा देते कि चलो अगर तीन बजे तक भी दिल्ली पहुँच गए तो वहाँ से समय पर एयरपोर्ट पहुँच जाएँगे।

बीच की बर्थ खुलने से निचली बर्थ पर बैठने की ज्यादा जगह बन गई। दीपा खिड़की की सीट पर बैठी, खिड़की की ग्रिल पर अपनी कोहनी रखे और हाथों में अपने चेहरे को टिकाए ट्रेन के बाहर के दृश्य को चीन्हने-पहचाने की कोशिश कर रही थी। धीमे चलती हुई ट्रेन और भी ज्यादा रेंगने लगी। गाँव की कोई पुलिया थी। छोटी सी सड़क पर रेलवे क्रासिंग के फाटक बंद थे। फाटक के दूसरी तरफ लोग ट्रेन के गुजरने का इंतजार कर

रहे थे। ट्रेन की धीमी गति के चलते उनका इंतजार भी और लंबा हो रहा था। दीपा की निगाहें कभी उनमें से किसी एक पर ठहर जाती, फिर उनके पार्श्व में मौजूद कोहरे में कहीं जाकर खो जाती।

मामा जी यानी संतोष चतुर्वेदी को लाल रंग की दाढ़ी से चिढ़ थी। सामने कोई मुसलमान बैठा हो तो उन्हें खाना खाना भी पसंद नहीं था। लेकिन, रेलवे की इस गलती को वे कैसे ठीक करते। इसलिए रात को चुप-चाप अपर बर्थ पर जाकर अपनी खोल में सिमट गए थे। वहाँ से सुबह होने पर ही नीचे उतरे थे। लेकिन, अब दोनों बाप और बेटों को हवाई जहाज और हवाई अड्डे के बारे में बातें करते सुनकर उनकी दिलचस्पी उनमें कुछ जागी।

आप लोगों को भी फ्लाइट पकड़नी है।

हाँ, शाम को पाँच बजे आईजीआई एयरपोर्ट से। सउदिया जाना है।

आप वहाँ काम करते हैं।

हाँ।

फिर बातों का सिलसिला शुरू हो गया। सलीम अहमद को संतोष चतुर्वेदी ने भी बताना शुरू किया कि ट्रेन लेट होने की उन्हें भी बड़ी चिंता है। उनका भांजा वड़ोदरा से आने वाला है। अपनी बहू को ले जाने। समय से नहीं पहुँच पाए तो क्या होगा। फिर, संतोष चतुर्वेदी और सलीम अहमद सऊदी अरब पर बात करने लगे। सलीम अहमद वहाँ की कोई खासियत बताते और संतोष चतुर्वेदी उसके प्रतिवाद में कहते, लेकिन जो बात अपने देश में है वो कहीं नहीं। अपने घर में चाहे कोई सूखी रोटी भी खा ले। चाहे जैसे रहे। लेकिन, वहाँ तो बताते हैं कि महीनों तक रेगिस्तान में ऊँट चराने की नौकरी होती है। और चोरी करने पर हाथ काट लिया जाता है। सलीम अहमद इसका प्रतिवाद करते। दोनों के बीच शुरू हुए बातों के सिलसिले से बोगी में मौजूद मनहूसियत कुछ हद तक टूट गई। जमीन पर रात गुजार चुके लोग भी धीरे-धीरे सीट पर काबिज होने लगे थे। मामाजी को नीचे उतरा देखकर उनकी अपर बर्थ पर एक जवान अपना कब्जा जमा चुका था। सीट पर बैठे लोगों में भी इस मुद्दे पर बहस होने लगी। कुछ लोगों का राष्ट्रवाद जाग गया।

एक बोला, अरे कुछ नहीं है सउदिया में, रेगिस्तान ही रेगिस्तान है।

दूसरा बोला, यहाँ से जो जाते हैं, उन्हें एक कमरे में बंद कर देते हैं। दिन-भर, रात-भर काम करना पड़ता है। महीने में एक बार ही आदमी बाहर आ सकता है।

अब कोई इन बातों का क्या जवाब देता, सलीम अहमद कुछ देर तो चुप रहे फिर अकरम के साथ कुछ घरेलू बात करने लगे। संतोष चतुर्वेदी की टेक अभी भी वही थी, कुछ भी हो जो बात अपने यहाँ है, वो कहीं नहीं। अपने घर में चाहे आदमी सूखी रोटी भी खा ले।

ट्रेन के इटावा स्टेशन से कुछ ही आगे होने की बात सबसे पहले जान लेने के बाद भी आरएसी वाला लड़का उस पर भरोसा नहीं कर सका। जब इस बात की पुष्टि हो गई तो उसके सीने से ढेर सारी ठंडी साँस निकल पड़ी। अब क्या होगा। यानी आज ऑफिस कैसे जाना होगा। वो मेडिकल रिप्रेंजेटेटिव था। शुक्रवार की रात काम खतम करके ऑफिस से ही निकलकर घर जाने के लिए उसने प्रयागराज पकड़ ली थी। शनिवार और रविवार का दिन इलाहाबाद में बिताने के बाद रविवार की रात वह दिल्ली वापसी कर रहा था। सोमवार की सुबह उसे ऑफिस में मौजूद होना था। लेकिन, अब ये होगा कैसे। खैर कोई नहीं बात नहीं। सेकेंड हॉफ में ऑफिस चला जाऊँगा। उसने अपनी आँखें बंद कर लीं और अधलेटा सा होकर पीछे सीट पर अपना सिर टिका दिया।

रात भर उसके साथ सीट साझा करने वाली लड़की की नींद भी दूर हो चुकी थी। लेकिन, ट्रेन लेट हो चुकी है यह जानकर उसने उठने की जहमत नहीं की। अपनी अधमुँदी आँखों से वह कभी ट्रेन के किसी दृश्य को पकड़ने की कोशिश करती तो कभी आँख बंद कर लेती। फिर कुछ निश्चय करके वह उठ बैठी। अपने पैर को खींचते हुए और पीठ को सीट पर टिकाते हुए वह भी अधलेटी सी बैठ गई। अभी-अभी नींद से जागी उसकी आँखें सूजी-सूजी सी लग रही थीं। गाल फूले हुए थे। बालों में लगा हेयरबैंड ढीला हो गया। जिससे बाल भी बिखर गए।

आरएसी वाले लड़के ने उसकी आँखें बचाकर उसकी तरफ देखा। लेकिन लड़की ने उसकी चोरी पकड़ ली। लड़के ने निगाह नीची कर ली। अब उसने पहल की, मेरा नाम अभिलाषा है।

अं, हाँ, लड़के की तंद्रा टूटी। मेरा नाम अनिरुद्ध है।

मैं जेएनयू में पढ़ती हूँ। रिसर्च कर रही हूँ।, ट्रेन लेट थी और कोई जल्दी नहीं थी, लड़की उसे बताने लगी। अपना-अपना परिचय देने के बाद दोनों हाथ मिलाया। बातों का सिलसिला दोनों ओर से चल पड़ा। लड़के का घर ममफोर्ड गंज में था तो लड़की

छोटा बघाड़ा की रहने वाली थी। लड़के ने कर्नलगंज इंटर कॉलेज से पढ़ाई की थी। तो लड़की डीपी गर्ल्स कॉलेज की छात्रा थी। बाद में लड़की ने जेटी में पढ़ाई की तो लड़के ने खुद को गर्व के साथ इलाहाबाद विश्वविद्यालय का छात्र बताया। कुछ ही देर में ऐसा लग ही नहीं रहा था कि उन्हें कहीं पहुँचने के लिए देर हो रही है।

जबकि, ट्रेन में बैठे बाकी लोगों की चिंताओं में कई गुना इजाफा करते हुए ट्रेन 11 बजे कहीं जाकर अलीगढ़ पहुँची। इस वक्त तक भी कोहरा छँटा नहीं था। सूरज देवता नदारद थे। हालाँकि, कहीं-कहीं कोहरे के बीच से झाँकते हुए नजर तो आते लेकिन इतने श्रीहीन हो चुके थे कि उनकी रोशनी से पूरा जग तो रोशन नहीं ही हो सकता था। सुबह जल्दी पहुँच ही जाना है, सोचकर कई लोगों ने तो पानी भी नहीं रखा था। प्लेटफार्म पर लोग भागते-दौड़ते नजर आ रहे थे। पूड़ी-पूड़ी - पूड़ी और चा-चा...चाए जैसी आवाजें हर तरफ से आ रही थीं। शुक्र इतना ही कहिए कि स्टेशन पर ट्रेन ज्यादा देर तक नहीं रुकी। ग्रीन सिगनल मिला और ट्रेन धीरे-धीरे खिसकने लगी।

ग्यारह बजे अलीगढ़ पहुँची ट्रेन कितने बजे दिल्ली पहुँचेगी, इसको लेकर एक बार फिर से चर्चा शुरू हो गई। कोई आशावादी था जो कह रहा था कि अब यहाँ से गाड़ी खींचेगी। तो कोई निराशावादी था तो कह रहा था कि एक बार जो गाड़ी लेट हो गई तो वह और भी लेट होती ही जाएगी।

अलीगढ़ पर उतरने वाले तो कम थे लेकिन बोगी में एक भीड़ सी घुस आई। सफेद कुर्ता और टखने तक चढ़ा हुआ सफेद मुसलमानी पायजामा पहने एक नौजवान भी आठ बर्थ के इस सेट में घुस आया। पहले से बर्थ पर बैठे हुए लोगों में से किसी ने भी उसे जगह देने में दिलचस्पी नहीं दिखाई। सिर पर जालीदार सफेद मुसलमानी टोपी और आधी बाजू के कुर्ते से दिख रहे मजबूत बाजुओं ने सभी लोगों के मन में एक तरह के पूर्वाग्रह से भर दिया। चतुर्वेदी एंड फैमिली भी नाक-भौं सिकोड़ती हुई दूसरी तरफ देखने लगी। सलीम अहमद खिसककर जगह बनाना चाहते थे पर उनकी बर्थ पर बैठे लोगों ने इसकी जरा भी इच्छा नहीं दिखाई।

बर्थ पर बैठे लोग थोड़ा फूलकर जैसे ज्यादा से ज्यादा जगह छेंकना चाह रहे थे। नौजवान ने दो लोगों के बीच थोड़ी सी जगह की तरफ इशारा करते हुए कहा, भाई जान थोड़ी सी जगह दे दो।

यहाँ पर कहाँ जगह है।

अरे भाइयों, जरा सा तो खिसक जाओ। मैं भी बैठ जाऊँगा।

यहाँ जगह कहाँ है, दूसरी जगह क्यों नहीं देखते।

अरे, थोड़ी जगह क्यों नहीं दे देते, भइया बहुत एमरजेंसी में जा रहा हूँ। बहुत जरूरी है। नहीं तो मैं तो जाता ही नहीं।

लेकिन, लोग आजू-बाजू देखने लगे।

देखो, बाबू जी, जाऊँगा तो मैं भी इसी ट्रेन में और यहीं पर बैठकर। थोड़ा सा खिसककर जगह क्यों नहीं देते।

गरमागरमी होने लगी। बर्थ पर बैठा हुआ आदमी टस से मस होने का नाम नहीं ले रहा था। मुसलमानी टोपी और पायजामा पहने हुए युवक ने उसे कंधे से पकड़कर खिसकाना चाहा तो उसने अपना कंधा झटक दिया। लेकिन, माना वह भी नहीं। वह वह दोनों लोगों के बीच में अपने पिछवाड़े से जगह बनाता हुआ बैठ गया। उसके तगड़े शरीर और मजबूत बाजुओं को देखकर आजू-बाजू बैठे दोनों लोगों ने थोड़ा-थोड़ा खिसक कर और थोड़ी सी हवा जो उन्होंने अपने अंदर भर रखी थी, कम करके जगह बना दी। गरमागरमी की आवाज सुनकर उधर टीटी आ गया। अलीगढ़ मे पी गई चाय से वह थोड़ा तरो-ताजा भी दिखने लगा। टीटी बोला, अरे जिसे बैठने की जगह न हो पीछे के डिब्बे में चले जाओ। पूरी बोगी खाली पड़ी है।

दरअसल, पिछली पूरी की पूरी बोगी का रिजर्वेशन कानपुर से अलीगढ़ तक के लिए कराया गया था। यह एक बारात थी। बारात को अनुमान था कि चार बजे ट्रेन अलीगढ़ पहुँच जाएगी। लड़की वालों ने चार बजे स्टेशन के पास ही बरातियों के स्वागत का इंतजाम कर रखा था। यहाँ से तरोताजा होकर बारात को वेडिंग प्वाइंट तक जाना था। वहीं पर 12 बजे का निकाह था। इसके बाद खाना-पीना। रात को प्रयागराज से ही इस बारात को वापस लौटना था। लेकिन, तड़के चार बजे की बजाय बारात जब दिन में 11 बजे अलीगढ़ पहुँची तब तक बारातियों के चेहरे पर 12 बज चुके थे। यही पूरी की पूरी बोगी खाली हुई थी।

लेकिन, टीटी के बताने पर भी युवक को इसका भरोसा नहीं हुआ। वह अपनी थोड़ी सी जगह पर ही बैठा रहा। पता नहीं टीटी की बात कितनी सच्ची है।

अभी वह किसी तरह कसमसा कर अपनी जगह बना ही रहा था कि उसके मोबाइल की रिंग बजी।

हाँ-हाँ, चचा, बैठ गया हूँ। ...नहीं-नहीं, अरे ये प्रयागराज पर बैठा हूँ। ...कोहरे की वजह से ट्रेन लेट थी। यही सबसे पहले मिल गई। ...अरे चच्ची से भी कह दीजिएगा, बस थोड़ा देर इंतजार कर लें। बस मैं तीन-चार घंटे में पहुँच जाऊँगा।

उधर से कुछ बोला जाने लगा, इस पर लगभग गिड़गिड़ाता हुआ सा वह बोला, थोड़ा इंतजार कर लो चचा, मैं भी चचाजान को आखिरी बार देख लूँगा। छोटा सा था, तब से उन्होंने पाल-पोस के बड़ा कर दिया। कुदरत की तरह सिर पर साया किया। दफनाने में देर नहीं होगी चचा, बस आखिर बार चचाजान को मुझे देख लेने दो।

उधर से शायद कुछ आश्वासन मिला होगा। उसकी खरखरी सी आवाज की भर्राहट और पनियाई हुई आँखों ने बगलवालों के दिलों में भी थोड़ी सी जगह की। उन्होंने उसे खिसककर थोड़ी सी जगह और दे दी।

बगल वाले में से एक ने पूछा, क्या हुआ भैया।

हमारे चचाजान चल बसे। रात में सोए थे, सुबह जब लोग जगाने लगे तो उठे ही नहीं।

बीमार रहे होंगे।

नहीं, आज तक जो कोई बीमारी हुई हो। अपने हाथ से ही सारा काम करते थे। पता नहीं किसकी नजर लग गई। हमारे अब्बू के मरने के बाद बचपन में उन्होंने अपनी छाया में हमें पाला।

उम्र क्या थी।

उमर भी कोई ज्यादा नहीं। यही कोई **60-65** साल के रहे होंगे।

मय्यत में जा रहे इस आदमी के प्रति अब शायद ही किसी के मन में कोई गिला बचा हुआ था।

चार बजे का वक्त रहा होगा, जब ट्रेन गाजियाबाद स्टेशन पर पहुँची। इस जगह पर ट्रेन खाली होने लगी। जालीदार टोपी और टखने तक ऊँचे पायजामे वाला नौजवान भी ट्रेन से उतर गया। कुछ ही मिनटों में यहाँ से ट्रेन चल पड़ी। पहुँचना तो अब सीधे नई दिल्ली रेलवे स्टेशन था। लेकिन, प्लेटफार्म पर जगह नहीं मिलने के कारण ट्रेन इस बार तिलक ब्रिज रेलवे स्टेशन पर रुक गई। हर आदमी चिंता में डूबा हुआ था। अब क्या किया जाए। सलीम अहमद और उनके बेटे ने प्लेन पकड़ने की उम्मीद छोड़ दी

थी। अब तो हवाई अड्डे तक पहुँचना संभव नहीं है। कल-परसों में आगे की टिकट देखनी पड़ेगी। सउदिया में एजेंट को भी खबर करनी होगी।

दीपा का फूला हुआ सुंदर चेहरा थोबड़े में तब्दील होने में कोई कसर नहीं छोड़ रहा था। सुबह होंठों पर लगाई गई लिपिस्टिक के निशान ही बचे रह गए थे। सर्द हवाओं ने होंठों पर अपने निशान छोड़ने शुरू कर दिए। पपड़ाए होंठों पर वह कभी जुबान फेर लेती तो कभी उस पर लिप गार्ड लगाकर मुलायम बनाने की कोशिश करती। निशांत का फोन ही नहीं लग रहा था। पता भी नहीं चल पा रहा था कि वे समय से हवाई अड्डे पर पहुँच भी गए थे कि नहीं। जिस प्लेन में वापसी थी, उसके टिकट वापस हो जाएँगे क्या। पता नहीं कितने का नुकसान होगा। सास भी ट्रेन की देरी से खीजी हुई और बहू की नादानी से चिढ़ी हुई दिख रही थीं। हालाँकि, यह बाद में कहीं जाकर पता चला कि उस दिन घने कोहरे की वजह से हवाई सेवाएँ भी ठप हो गईं थी और कई सारी उड़ानें कोहरे की वजह से निरस्त कर दी गई थीं।

अट्ठारह घंटों से भी ज्यादा का समय ट्रेन की अपर बर्थ पर गुजारने के बाद रँगरूट नीचे उतर आया। अब वह लोगों से पूछने लगा। जल्दी से जल्दी अंबाला कैसे पहुँचा जा सकता है। इस समय कोई ट्रेन होगी क्या। अब तो यूनिट में देर हो ही जाएगी। किसी ने बताया कि स्टेशन मास्टर इस तरह का प्रमाणपत्र बनाकर दे देगा कि ट्रेन लेट हुई है। इससे यूनिट में उसकी गलती माफ हो जाएगी। रँगरूट पूरी तल्लीनता के साथ उनसे यही जानने में लगा हुआ था कि स्टेशन मास्टर से प्रमाणपत्र बनाने के लिए क्या कहना होगा। इसकी प्रक्रिया क्या होती है।

और ये करीब सवा पाँच बजे का वक्त रहा होगा, जब यह ट्रेन नई दिल्ली रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म जा लगी। कुछ कुलियों के अलावा यहाँ पर ट्रेन का स्वागत करने वाला कोई नहीं था। चाय-समोसे वालों को यहाँ से कुछ खरीदे जाने की उम्मीद नहीं थी। थके-थके से यात्री ऐसे धीरे-धीरे अपना सामान निकाल रहे थे जैसे सदियों की यात्रा करके आए हों। अब तक शाम हो चुकी थी और सुबह का कोहरा अभी छँटा नहीं था और शाम का कोहरा दोबारा छाने की तैयारी करने लग चुका था।

और जिस समय तक कोहरे की चादर घनी होती, एक ही बर्थ को रात भर साझा करने वाले लड़का-लड़की कनॉट प्लेस पर भरपेट मोमो खा चुके थे। इसके बाद वे कॉफी की चुस्कियाँ लगाने लगे। लड़की को आज अपनी थीसिस की पहली कॉपी जमा करनी थी। जबकि, लड़का इस आपाधापी में अपने ऑफिस में फोन करना ही भूल गया। लेकिन, दोनों बैठे ऐसे थे कि जैसे उन्हें कहीं जाने की जल्दी ही नहीं।

,

https://www.hindiadda.com/prayagraj-express/